३५ कर्मक्षय और प्रवृत्ति

□ श्री किशोरलाल मश्रुवाला

एक सज्जन मित्र लिखते हैं—"कुछ लोग कहते हैं कि कर्म का सम्पूर्ण क्षय हुए बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती, और कर्म से निवृत्त हुए बिना कर्म क्षय की सम्भावना नहीं है। इसलिये निवृत्ति मार्ग ही आत्मज्ञान अथवा मोक्ष का मार्ग है। क्योंकि जो भी कर्म किया जाता है, उसका फल अवश्य मिलता है। अर्थात् मनुष्य जब तक कर्म में प्रवृत्त रहेगा तब तक वह चाहे अनासक्ति से कर्म करता हो तो भी कर्मफल के भार से मुक्त नहीं हो सकता। इससे कर्म बन्धन का आवरण हटने के बदले उलटा घना होगा। इसके फलस्वरूप उसकी साधना खंडित होगी। लोक-कल्याण की दृष्टि से भले ही अनासक्ति वाला कर्मयोग इष्ट हो, परन्तु उससे आत्मज्ञान की साधना सफल नहीं होगी। इस विषय में मैं आपके विचार जानना चाहता हूँ।"

मेरी नम्र राय में कर्म क्या, कर्म का बन्धन और क्षय क्या, प्रवृत्ति और निवृत्ति क्या, आत्मज्ञान और मोक्ष क्या इत्यादि की हमारी कल्पनाएं बहुत ही अस्पष्ट हैं। अतएव इस सम्बन्ध में हम उलझन में पड़ जाते हैं और साधनों में गोते लगाते रहते हैं।

इस सम्बन्ध में पहले हमें यह समझ लेना चाहिये कि शरीर, वाणी और मन की क्रियामात्र कर्म है। कर्म का यदि हम यह अर्थ लेते हैं तो जब तक देह है तब तक कोई भी मनुष्य कर्म करना बिलकुल छोड़ नहीं सकता। कथाओं में आता है उस तरह कोई मुनि चाहे तो वर्ष भर तक निर्विकल्प समाधि में निश्चेष्ट होकर पड़ा रहे, परन्तु जिस क्षण वह उठता उस क्षण वह कुछ न कुछ कर्म अवश्य करेगा। इसके अलावा यदि हमारी कल्पना ऐसी हो कि हमारा व्यक्तित्व देह से परे जन्म-जन्मान्तर पाने वाला जीव रूप है, तब तो देह के बिना भी वह क्रियावान रहेगा। यदि कर्म से निवृत्त हुए बिना कर्मक्षय न हो सके तो उसका यह अर्थ हुआ कि कर्मक्षय होने की कभी भी सम्भावना नहीं है।

इसलिये निवृत्ति अथवा निष्कर्मता का अर्थ स्थूल निष्क्रियता समझने में भूल होती है। निष्कर्मता सूक्ष्म वस्तु है। वह आध्यात्मिक अर्थात् बौद्धिक, मानसिक, नैतिक भावना-विषयक और इससे भी परे बोधात्मक (संवेदनात्मक) है। क, ख, ग, घ नाम के चार व्यक्ति प, फ, ब, भ नाम के चार भूखे आदमियों

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

को एक सा अन्न देते हैं। चारों बाह्य कर्म करते हैं और चारों को सामान स्थूल तृप्ति होती है। परन्तु सम्भव है कि 'क' लोभ से देता हो, 'ख' तिरस्कार से देता हो, 'ग' पुण्येच्छा से देता हो और 'घ' आत्मभाव से स्वभावतः देता हो। उसी तरह 'प' दुःख मानकर लेता हो, 'फ' मेहरबानी मानकर लेता हो, 'ब' उपकारक भावना से लेता हो, 'भ' मित्र भाव से लेता हो। अन्नव्यय और क्षुधा-तृप्ति रूपी बाह्य फल सबका समान होने पर भी इन भेदों के कारण कर्म के बन्धन और क्षय की दृष्टि से बहुत फर्क पड़ जाता है। उसी तरह क, ख, ग, घ, से प, फ, ब, भ अन्न मांगें और चारों व्यक्ति उन्हें भोजन नहीं करावें, तो इसमें कर्म से समान परावृत्ति है और चारों की स्थूल भूख पर इसका समान परिणाम होता है। फिर भी भोजन न करावें या जल न पाने के पीछे रही बुद्धि, भावना, नीति, संवेदना इत्यादि भेद से इस कर्म-परावृत्ति से कर्म के बंधन और क्षय एक से नहीं होते।

तो यहाँ प्रवृत्ति और निवृत्ति के साथ पुनरावृत्ति और वृत्ति शब्द भी याद रखने जैसे हैं। परावृत्ति का अर्थ निवृत्ति नहीं है। परन्तु बहुत से लोग परावृत्ति को ही निवृत्ति मान बैठते हैं और वृत्ति अथवा वर्तन का अर्थ प्रवृत्ति नहीं है। परन्तु बहुत से लोग वृत्ति को ही प्रवृत्ति समझते हैं। वृत्ति का अर्थ है केवल बरतना। प्रवृत्ति का अर्थ है विशेष प्रकार के आध्यात्मिक भावों से बरतना। परावृत्ति का अर्थ है वर्तन का अभाव, निवृत्ति का अर्थ है वृत्ति तथा परावृत्ति सम्बन्धी प्रवृत्ति से भिन्न प्रकार की एक विशिष्ट आध्यात्मिक संवेदना।

अब कर्म-बन्धन और कर्मक्षय के विषय में बहुतों का ऐसा खयाल मालूम होता है, मानो कर्म नाम की हर एक के पास एक तरह की पूंजी है। पाँच हजार रुपये ट्रंक में रखे हुए हों और उनमें किसी तरह की वृद्धि न हो परन्तु उनका खर्च होता रहे, तो दो-चार वर्ष में या पच्चीस वर्ष में तो वे सब अवश्य खर्च हो जायेंगे। परन्तु यदि मनुष्य उन्हें किसी कारोबार में लगाता है तो उनमें कमोवेशी होगी और सम्भव है कि पांच हजार के लाख भी हो जायें या लाख न होकर उल्टा कर्ज हो जाय। यह घाटा भी चिंता और दुःख उत्पन्न करता है। सामान्य रूप से मनुष्य ऐसी चिंता और दुःख की सम्भावना से घबराते नहीं और लाख होने की सम्भावना से अप्रसन्न नहीं होते। वे न तो रुपयों का क्षय करना चाहते हैं और न रुपयों के बन्धन में पड़ने से दुःखी होते हैं। निवृत्ति-मार्गी साधु भी मंदिरों में और पुस्तकालयों में बढ़ने वाले परिग्रह से चिंतातुर नहीं होते। परन्तु कर्म नाम की पूंजी की हमने कुछ ऐसी कल्पना की है मानो वह एक बड़ी गठरी है और उसको खोलकर, जैसे बने वैसे उसे खत्म कर डालने में ही मनुष्य का श्रेय है, कर्म का व्यापार करके उससे लाभ उठाने में नहीं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्म को पूंजी की तरह समझने के कारण उसे खत्म करने की ऐसी कल्पना पैदा हुई है।

परन्तु कर्म का बंधन रुपयों की गठरी जैसा नहीं है। और वृत्ति-परावृत्ति अथवा स्थूल प्रवृत्ति-निवृत्ति से यह गठरी घटती-बढ़ती नहीं है। जगत् में कोई भी क्रिया हो चाहे जानने में हो या अनजान में वह विविध प्रकार के स्थूल और सूक्ष्म परिणाम एक ही समय में या भिन्न-भिन्न समय में, तुरन्त या कालान्तर में एक ही साथ या रह-रहकर पैदा करती है। इन परिणामों में से एक परिणाम कर्म करने वाले के ज्ञान और चारित्र के ऊपर किसी तरह का रजकण जितना ही असर उपजाने का होता है। करोड़ों कर्मों के ऐसे करोड़ों असरों के परिणामस्वरूप हर एक जीव का ज्ञान-चारित्र का व्यक्तित्व बनता है। यह निर्माण यदि उत्तरोत्तर शुद्ध होता जाये और ज्ञान, धर्म, वैराग्य इत्यादि की ओर अधिकाधिक झुकता जाये तो उसके कर्म का क्षय होता है ऐसा कहा जायेगा। यदि वह उत्तरोत्तर अशुद्ध होता जाये—अज्ञान, अधर्म, राग इत्यादि के प्रति बढ़ता जाये तो उसके कर्म का संचय होता है ऐसा कहा जायेगा।

इसी तरह कर्मों की वृत्ति-परावृत्ति नहीं, परन्तु कर्म का जीव के ज्ञान-चारित्र पर होने वाला असर ही बंधन और मोक्ष का कारण है। जीवन-काल में मोक्ष प्राप्त करने का अर्थ है ऐसी उच्च स्थिति का आदर्श, जिस स्थिति के प्राप्त होने के बाद उस व्यक्ति के ज्ञान-चारित्र पर ऐसा असर पैदा न हो कि उसमें पुनः अशुद्धि घुस सके।

इसके लिये कर्त्तव्य-कर्मों का विवेक तो अवश्य करना पड़ेगा। उदाहरणार्थ अपकर्म नहीं करने चाहिये, कर्त्तव्य रूप कर्म तो करने ही चाहिये, अकर्त्तव्य कर्म छोड़ने ही चाहिये। चित्तशुद्धि में सहायक सिद्ध होने वाले दान, तप और भक्ति के कर्म करने चाहिये इत्यादि। इसी तरह कर्म करने की रीति में भी विवेक करना पड़ेगा। जैसे ज्ञानपूर्वक कर्म करना, सावधानीपूर्वक करना, सत्य, अहिंसा आदि नियमों का पालन करते हुए करना, निष्काम भाव से अथवा अनासक्ति भाव से करना इत्यादि। परन्तु यह कल्पना गलत है कि कर्मों से परावृत्ति होने पर कर्मक्षय होता है। कर्त्तव्य रूप कर्म से परावृत्त होने की अपेक्षा कदाचित् सकाम भाव से अथवा आसक्ति भाव से किये हुए सत्कर्मों से अधिक कर्म-बंधन होने की पूरी सम्भावना है।

• • •

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org